IJAER/May-June 2019/Volume-7/Issue-6/Article No-1/1-7 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

भारत में समाज सुधार आन्दोलन

Shailendra Pratap Singh
CLM Inter College
Jani Khurd Meerut.
M.A.(Sociology, Pol.Science, Education)

सामाजिक संस्कृति के प्रारम्भिक काल में बहुत छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना हुई। उस छोटे से क्षेत्र का सम्पूर्ण दायित्व वहाँ का शासक ही सम्भाल लेता था। केवल भारत में ही छोटे-छोटे हजारों राज्य थे। यातायात की सुविधाओं में कमी होने और संचार विभाग का अभाव होने के कारण केवल संवाहकों द्वारा ही संदेश पहुँचाये जाते थे। तब दूर-दराज स्थान की यात्रा करना और किसी विशाल राज्य का कार्यभार सम्भालना सम्भव नहीं था। उस समय के अधिकांश राजा अपनी प्रजा के लिये अत्यन्त संवेदनशील हुआ करते थे और वे उनकी आवश्यकताओं व सुख-सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे तथा प्रजा सुखी थीं।

प्रारम्भिक सांस्कृतिक युग में समृद्ध व सम्पन्न वर्ग को भी अधिक सुविधायें प्राप्त नहीं थीं और वे किसी दूसरे की सहायता करने में समर्थ भी नहीं थे। भोजन सामग्री का अभाव था, तथा प्रत्येक वस्तु की कमी थी। मिट्टी के बने हुए घर रहने के लिये होते थे या फिर लकड़ी के मकान भी बनाये जाते थे। जिनमें संरक्षण की कोई उचित व्यवस्था न थी। मनुष्य की आर्थिक स्थिति मुख्यतः उसके परिश्रम पर निर्भर थी। केवल राजा को छोड़कर सारे लोग एक जैसा भोजन करते थे। प्रगति के साथ समाज में विभाजन प्रारम्भ हो गया तथा धीरे-धीरे एक बड़ा समुदाय विकास में पिछड़ जाने के कारण दूसरे लोगों से अलग हो गया। समाज से विघटित हुआ यह वर्ग निम्न श्रेणी के समझे जाने वाले कार्यों को करने के लिए बाध्य हो गया।

जब विभिन्न समुदायों में अन्तर के लक्षण दिखाई पड़ने लगे, तब कुछ समाज सुधारक, समाज में सुधार लाने के लिए आगे आये, जो इस समय केवल परामर्श के रूप में ही किया जाता था परन्तु समय गुजरने के साथ-साथ इसने धर्म का रूप ले लिया।

कुछ लोग कमजोर वर्ग पर अत्याचार करके प्रसन्न होते थे लेकिन कई लोग दलित वर्ग और निर्धनों की ऐसी दयनीय दशा देखकर द्रवित हो जाते थे। कुछ लोगों ने दलितों की सहायता करने की सोची और उनका पुनरूत्थान कराने का विचार भी किया।

मनुष्य का स्वार्थ और शक्ति का गलत उपयोग करने की प्रवृत्ति ने सदैव इन पुनरूत्थानों की राह में बाधायें डालीं। श्रेणी विभाजन लगभग हर समुदाय में देखने को मिलता है और कोई भी धार्मिक प्रारूप इसके प्रहार से बचा हुआ नहीं है, लेकिन हिन्दू समाज पर इसकी गहरी और व्यापक छाप देखने को मिलती है, जहाँ इस धर्म के किन्हीं समुदायों को अस्पृश्य घोषित कर दिया गया। हिन्दू समाज के विघटन का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण कारण यही था जिसकी कीमत लोगों को शताब्दियों तक गुलाम रहकर चुकानी पड़ी।

धार्मिक भावनाओं[प] की जड़ें इतनी गहरी होती हैं कि विदेशी शासन के उपरान्त भी बहुत कम हिन्दू धर्म परिवर्तन के लिये तैयार हुए। वास्तव में, कई करोड़ हिन्दू दयनीय जीवन जीने को विवश थे। उनकी मान्यता थी कि शायद अगले जन्म में वे कुछ सुखी रह जायेंगें। यदि इस जन्म की पीड़ा को, जो उनके पूर्व जन्मों के दुष्कर्मों की वजह से मिली हैं, वे अपनी नियति समझकर सहन कर लें। पुनर्जन्म में गहन आस्था, भाग्य पर पूर्ण विश्वास तथा समर्पित होने की भावना ने असंख्य लोगों को असन्तुष्ट होने से बचाये रखा। यह वास्तव में अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण है कि मानव जनसंख्या का इतना विशाल समूह शताब्दियों तक विद्रोह की आवाज किये बिना अत्याचारों के बोझ तले दारूण दशा में जीवन व्यतीत करता रहा।

समाज के उद्धार के प्रारम्भिक लिखित दस्तावेज और प्रमाण[पप] लगभग दो हजार छह सौ वर्षों पूर्व जैन धर्म की उत्पत्ति के रूप में उपलब्ध हैं। उस समय ऋषभदेव जी नामक प्रथम तीर्थंकर (तपस्वी जैन सन्यासी) ने लोगों को सत्य और अहिंसा के पथ पर चलने का उपदेश दिया। चौबीस तीर्थंकर जैन सन्यासियों का जन्म हुआ और उन सभी ने जनता को प्रेम और संपत्तिहीनता का संदेश और उपदेश दिया। जैन धर्म की ख्याति उनके चौबीसवें गुरू तीर्थंकर महाराज वर्धमान महावीर की छत्रछाया में हुई। उन्होंने सम्पन्न लोगों को सही ज्ञान, सही आस्था और सदाचार का पालन करने का उपदेश दिया। उनके अनुसार किसी को भी, यहाँ तक कि छोटे से

छोटे जीव को भी हानि न पहुँचाना, सत्य बोलना, चोरी न करना और कुछ भी संचित न करना वास्तविक कर्म है। यदि समृद्ध श्रेणी इन सिद्धान्तों पर चलना सीख ले जो समाज की स्थिति और दलित वर्ग की दशा में भी अभूतपूर्व सुधार आ सकता है।

महाराज गौतम बुद्ध (सिद्धार्थ)[पपप] का जन्म भी महाराज महावीर के समय में ही हुआ। मानवता पर किसी भी प्रकार का आघात होते देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था और आँखें नम हो जाती थी। बीमार, वृद्ध और अपंग लोगों की दुर्दशा देखकर उनका मन विचलित हो गया। किसी रोगी की मृत्यु पर उनका हृदय वेदना से भर उठा और अन्त में उन्तीस वर्ष की आयु में वे वैरागी हो गये। उन्तालीस वर्ष की आयु में उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हुयी और उन्होंने सारनाथ में अपना पहला उपदेश दिया। महात्मा गौतम बुद्ध 'कर्म' के सिद्धान्त में आस्था रखते थे और उन्होंने जातिवादिता का जड़ से उन्मूलन कर दिया क्योंकि उनका मानना था कि प्रत्येक मानव एक समान है और कोई भी व्यक्ति अपने जन्म-स्थान या माता-पिता की पद्वी से वरिष्ठ या कनिष्ठ नहीं हो जाता। व्यक्ति के चरित्र का मूल्यांकन उसके किये गये कर्मों से करना चाहिये।

उन्होंने मध्य का मार्ग अपनाया जिस पर चलकर असीमित आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। उन्होंने कहा कि यह संसार दुःखों का सागर है और ये दुःख मनुष्य की लालसा के कारण होते हैं तथा अपनी इच्छाओं का त्याग ही मुक्ति का सच्चा मार्ग है। गौतम बुद्ध ने सही मार्ग पर चलने पर बल दिया। उनकी अष्टसंख्यक उपदेश सूची इस प्रकार है -
(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन (४) सम्यक् कर्म (५) सम्यक् व्यायाम (६) सम्यक् आजीव (७) सम्यक् स्मृति (८) सम्यक् समाधि।

बौद्ध धर्म ने प्रेस, समानता और सत्य का संदेश सम्पूर्ण विश्व में पहुँचाया। अहिंसा बौद्ध धर्म का आधारभूत सिद्धान्त है, जिसे महाराजा अशोक महान ने बौद्ध धर्म का अनुयायी होने के बाद संसार के कोने-कोने तक पहुँचाया। लगभग दो सहस्त्राब्दियों तक संसार भर में बौद्ध धर्म के अनुयायी अन्य धर्मों के अनुयायियों की अपेक्षा सर्वाधिक संख्या में रहे। यद्यपि इस धर्म का उद्भवन भारत में हुआ, तथापि आज यह यहाँ पर अधिक प्रचलित नहीं है, क्योंकि सम्पन्न एवं समृद्धशाली लोगों ने कभी अविभाज्य समाज की स्थापना नहीं होने दी, जो बौद्ध धर्म का सर्वप्रथम सिद्धान्त था।

महात्मा गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी[पञ] के जन्म के लगभग छः शताब्दियों बाद जीसस क्राइस्ट का जन्म हुआ उन्होंने भी हर मानव को प्रेम का संदेश पहुँचाया। ईसाई धर्म भी समाज के विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करने में विश्वास नहीं रखता। इसमें मनुष्य की आय का १० प्रतिशत भाग गरीबों को दान करने को कहा गया है और इसलिये इसके अनेकों धर्मदूत दलित वर्ग की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास कर रहे हैं। इन धर्म दूतों का कार्य वास्तव में प्रशंसनीय है।

मध्यकाल में समाज सुधार आन्दोलन

ईसाई धर्म पन्द्रह शताब्दियों तक यूरोप में सिमटा रहा क्योंकि ईसाई पादरी बौद्ध भिक्षुओं की तरह नहीं थे जो अपने धर्म के प्रचार हेतु दूरस्थ क्षेत्रों में निकल पड़ें। यूरोपियन देशों जेसे पुर्तगाल, डच, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के ईसाई व्यापार करने के विचार से दूसरे देशों को गये। जब वहाँ कोई औद्योगिक प्रगति होती थी जिसमें वस्तुओं का अधिक उत्पादन होता था। जिनका ये लोग व्यापार करना चाहते थे तो ये लोग बाहर जाते थे। भारत में ईसाई लोग व्यापार करने के विचार से ही आये थे किन्तु बाद में उन्होंने कुछ राज्यों पर विजय प्राप्त करके शासकों की पदवी पा ली।

पादरी और ईसाई धर्म[अ] के अन्य प्रचारक यहाँ गिरजाघर की स्थापना करने, बाद में आये। उन्होंने अपना पूजा स्थल गिरजाघर बनवा तो लिया, पर भारतीय समाज ने स्थायी रूप से स्वीकार नहीं किया, कुछ अल्पसंख्यक भारतीयों ने ही ईसाई धर्म को अपनाया यद्यपि इसका सिद्धान्त भी यही था कि समाज को श्रेणियों में विभक्त नहीं करना चाहिये। भारत में प्रचार कर रहे ईसाई धर्म प्रचारकों ने कुछ दलित वर्ग के लोगों की सहायता की और उनकी स्थिति में सुधार लाने का भी प्रयास किया, किन्तु उसमें वे अधिक सफल नहीं हुये तथा ईसाई धर्म भारत के बहुसंख्यकों की विचारधारा पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका।

इस्लाम छठी शताब्दी में उदय होकर सारे अरब देशों में फैल गया। इस्लाम धर्म के अनुयायी यहाँ आक्रमणकारियों के रूप में आये थे और बाद में वे भारत के कुछ क्षेत्र पर विजय प्राप्त करके वहीं बस गये। इस्लाम भी जातिवाद में विश्वास नहीं करता और उसमें छुआछूत या ऊँच-नीच जैसी कोई बात नहीं है। कुछ लोगों ने इसके सिद्धान्तों से प्रभावित न होने पर भी इसको केवल भय के कारण गले लगाया। यद्यपि इस्लाम के मूलभूत उपदेश प्रेम, समानता, न्याय, सत्य और परोपकार आदि ही हैं, किन्तु फिर भी भारत में यह अधिक प्रसिद्धि नहीं पा सका, क्योंकि इसे लोग आक्रमणकारियों की संस्कृति के रूप में ही देखते रहे। यहाँ तक कि निर्धन

और दलित वर्ग ने भी इससे अपने को दूर ही रखा और केवल कुछ लोगों को छोड़कर अधिकतर भारतीय इसके उपदेशों का लाभ नहीं उठा सके।

गुरू नानक[अप] का जन्म १४६९ में पंजाब में उस समय हुआ जब भारतीय समाज विघटित हो चुका था और हिन्दू और मुसलमानों में आपसी लड़ाईयाँ चलती रहती थीं। उन्होंने लोगों को हिन्दू मुस्लिम एकता का संदेश दिया और उन्हें धैर्य एवं भाईचारे के उपदेश दिये। खालसा पंथ में हर व्यक्ति को समान समझा जाता है और वहाँ जाति विभाजन भी नहीं है। उन्होंने यह नारा लगाया कि ईश्वर एक है और सब मनुष्य एक समान हैं। गुरूनानक का यह संदेश दलित वर्ग के उद्धार के लिये प्रमुख था। उनके अनुयायियों में जातिवाद नहीं था।

'खालसा पंथ' उत्तर भारत में तो फैला किन्तु हिन्दुओं तक ही सिमट कर रह गया। गुरू नानक दिव्य दृष्टि और सिद्धि प्राप्त सन्यासी थे और बहुसंख्यक लोगों ने उनके उपदेशों का पालन किया। उनका आन्दोलन मुख्यतः सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में ही था। उन्होंने आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता, परिश्रम और सेवा पर अत्यधिक बल दिया। कोई भी सिख धर्म अपनाने पर (उसके धर्मोपदेशों का पालन करने पर) अछूत या दलित नहीं रह जाता और स्वयमेव ही सरदार (एक नेता) बन जाता है। सिखों के दसवें गुरू, गुरू गोविन्द सिंह ने 'खालसा पंथ' का विधिवत संगठन किया और उसका प्रचार करने के लिये अत्यन्त उद्यम किया। वे उसे हिन्दू धर्म की मुख्य धारा से अलग नहीं समझते थे यह आन्दोलन उत्तरी भारत की सम्पन्नता के लिये उत्तरदायी है, मुख्यतः पंजाब के लिये, जहाँ पर सामाजिक पिछड़ेपन की समस्या करीब-करीब समाप्त हो गयी थी।

गुरू गोविन्द सिंह[अपप] ने लोगों को आत्मविश्वास और परिश्रम के सम्मान का पाठ पढ़ाया। उन्होंने हर व्यक्ति को मानवता और राष्ट्र की सेवा करने का उपदेश दिया जिसके अन्तर्गत हर परिवार के एक लड़के को सिख धर्म का पालन करना होता था और आजीवन अच्छाई के पथ पर चलना, त्याग करना तथा न्याय और सत्य के मार्ग को अपनाना पड़ता था।

इसी पंथ के उपदेशों का प्रभाव था कि पाकिस्तान से आये सभी शरणार्थियों ने पूर्ण विश्वास और लगन से कठोर परिश्रम किया और एक दशक के अन्दर ही उन्होंने अपना खोया हुआ गौरव फिर से पा लिया तथा जो वहाँ से शरणार्थी बनकर आये थे, उन्होंने अपना सामाजिक और आर्थिक आधिपत्य जमा लिया। उनमें से किसी ने भी कही भीख मांगना, चोरी करना अथवा ऐसा कोई घृणित काम नहीं किया। उन्हें अपनी दृढ़ लगन और परिश्रम का परिणाम सम्पन्नता और सम्मान के रूप में मिला। यह दुर्भाग्य की बात है कि भारत की केवल दो प्रतिशत जनसंख्या ने ही गुरूनानक और गुरू गोविन्द सिंह के रास्तों को अपनाया। यदि इस राह पर पूरा समाज चल पड़ता तो भारत आज की अपेक्षा बहुत अधिक समृद्धशाली देश होता।

संत कबीर[viii] का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ और अपने बचपन से समाज सुधार के काम में लीन हो गये। वे किसी भी धर्म के सिद्धान्तों को विचार में न रखकर कटु सत्य बोलते थे। उनमें अर्थहीन एवं हास्यप्रद धार्मिक अनुष्ठानों की आलोचना करने का साहस था उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की गलत परम्पराओं पर भरपूर कटाक्ष किया तथा लोगों को प्यार एवं अपनत्व की भावना पर चलने की शिक्षा दी। वे मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे और साथ-साथ नमाज आदि का भी प्रतिरोध करते थे। वे कहते थे कि दूसरों से प्यार करने वाला ही सच्चा पंडित है।

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोई
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होई।"

संत कबीर का ज्ञान उनकी ठेठ क्षेत्रीय भाषा में लिखे सरल दोहों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। यद्यपि उनकी कवितायें अशुद्ध शब्द ज्ञान और दोषपूर्ण व्याकरण में लिखी होती थीं, फिर भी वे ज्ञान से परिपूर्ण हैं और समाज को सुखी बनाने के लिये ज्ञानवर्धक हैं। वे अंधविश्वास के पूर्णतया विरोधी थे और समाज को यह संदेश देना चाहते थे कि सभी मनुष्य एक समान हैं और विभिन्न समुदायों में कोई भेदभाव नहीं होना चाहिये। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता और बन्धुत्व की भावना पर बल दिया। संत कबीर के विचारों का उत्तर भारत के लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनके अनुगामियों को 'कबीर पंथी' कहा जाता था। संत कबीर के उपदेश अर्थपूर्ण हैं तथा लोग इन्हें पसन्द भी करते हैं। उत्तर भारत में संत कबीर के दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं किन्तु स्वार्थन्धता के कारण आज के युग में मनुष्य को इस शिक्षा पर चलना कठिन हो गया है। ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में जब राजाओं के अधिकार में थोड़े क्षेत्र का राज्य ही होता था तब वे अपनी प्रजा के लिए पूर्ण रूप से समर्पित थे और राज्य के आर्थिक और सामाजिक रूप से कमजोर लोगों का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। उन दिनों हर व्यक्ति अपने-अपने काम या व्यवसय में व्यस्त था, क्योंकि नौकरियों की

बहुत कमी थी गांव स्वयं में, सभी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन का स्वपर्याप्त इकाई था और गाँव के सभी निवासी एक ही परिवार के सदस्यों की तरह रहा करते थे।

मुसलमानों के आक्रमण और बारम्बर राजकीय खजाने की लूट-खसोट से हमारे देश की आर्थिक दशा गिरने लगी। गरीबी सदा भ्रष्टाचार और अपराधों की जननी होती है। स्थिति उस समय और भी बिगड़ गयी जब दिल्ली की राज्यसत्ता कमजोर हो गयी और अनेकों नवाब और जागीरदार आत्मनिर्भर हो गये। इन लोगों में कभी भी इस बात का अहसास नहीं होता था कि जनता उनकी संतान के समान हैं। वे जनता को अपना गुलाम समझने लगे। सत्रहवीं एवं अट्ठारहवीं शताब्दी में साधारण जन समुदाय की स्थिति और भी खराब हो गयी तथा वह भारत देश, जो शताब्दियों तक संसार का सबसे समृद्धशाली देश समझा जाता था, गरीबों और भूखे-नंगों का देश बनकर रह गया।

अट्ठारहवीं शताब्दी भारतीय इतिहास में निम्नतम काल के नाम से जानी जाती हैं, जहाँ चारों ओर अराजकता, वेदना एवं कष्ट थे। इसी युग में कई बेतुकी परम्परायें और अनुष्ठान आदि की नींव पड़ीं। उच्च श्रेणी को परेशान किया गया और वे लोग नगरों व शहरों से दूर जाने लगे। सामान्य सिद्धान्त के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के अत्याचारों का शिकार हो गया, तो वह स्वयं भी अपने से कमजोर वर्ग को प्रताड़ित करके उस पर अत्याचार करेगा। उच्च वर्ग के पढ़े लिखे लोगों के साथ दुराचार के परिणाम स्वरूप वे संवेदनाहीन हो गये जिसके कारण कमजोर वर्ग की स्थिति और भी तेजी से गिरने लगी। वैसे तो समूचे भारत में दलितों की दयनीय दशा देखी जा सकती थी, किन्तु दक्षिण भारत और उत्तर भारत में यह अधिक खराब थी। दुर्व्यसनों की परिपाटी चल निकलने से समाज में स्त्रियों की दशा सोचनीय हो गयी और उनका इतना अधिक उत्पीड़न होने लगा कि पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी को भी साथ ही जिन्दा जला दिया जाता था।

इसी काल में अस्पृश्यता के बादल और गहराने लगे और गरीबी इतनी प्रखर हो गयी कि निम्न वर्ग के लोग, जो आर्थिक रूप से अत्यन्त ही कमजोर थे, उच्चवर्गीय लोगों की बची जूठन खाकर पेट पालने को बाध्य हो गये।

सोलहवीं शताब्दी तक भारत का लघु उद्योग अत्यधिक विकसित था, इसलिये उस उद्योग में संलग्न लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अच्छी थी। लेकिन सत्रहवीं एवं अट्ठारहवीं शताब्दियों में यूरोप से आयात होने के कारण यहाँ के हथकरघा उद्योग का पूर्णतया सफाया हो गया, क्योंकि यह मशीन से बने बढ़िया और आकर्षक वस्त्रों के सामने एकदम फीकी पड़ गयी। हथकरघा वस्त्र उद्योग से जुड़े मजदूर कर्मचारियों को निम्नतर स्तर का काम करने पर बाध्य होना पड़ा और बहुत बड़ी संख्या में निपुण शिल्पशास्त्री, दैनिक मजदूरी लेकर तथाकथित नीच काम करने को विवश हो गये।

पंडित (ब्राह्मण) अधिक शिक्षित थे और अपनी जीविकोपार्जन के लिए दूसरे वर्गों द्वारा दिये दान दक्षिणा पर निर्भर थे। प्राचीन समय के राजा सत्ताहीन हो गये और वे अपनी घटिया आर्थिक स्थिति के कारण पंडितों को मोटी दान दक्षिणा देने योग्य नहीं रहे। क्षत्रियों की अर्थव्यवस्था बिगड़ जाने से वे कृषि उद्योग में व्यस्त हो गये क्योंकि सेना में उनके लिये कोई स्थान न बचा था। वैश्य (व्यापारी) वर्गों की स्थिति भी एकदम नीचे आ पहुँची क्योंकि बेचने के लिये स्थानीय उत्पादों का अभाव था और कृषि उद्योग प्राकृतिक जलवायु (जो प्रायः धोखा दे जाती थी), पर निर्भर था।

जब ब्राह्मणों ने अनुभव किया कि दूसरे लोग इच्छापूर्वक दान दक्षिणा देने की स्थिति में नहीं हैं, तो उन्होंने पूजा-पाठ और धार्मिक अनुष्ठानों का सहारा लिया, जिसमें हर व्यक्ति को कुछ न कुछ दक्षिणा देना अनिवार्य हो जाता था। वे धीरे-धीरे लोभी हो गये। ब्राह्मणों में पैसा लूटने के लिये शारीरिक शक्ति का अभाव था, लेकिन उनके पास दूसरों को मूर्ख बनाने वाला दिमाग था, जिससे हर कर्मकाण्ड पर उनके पास पैसा दान दक्षिणा के रूप में विभिन्न अवसरों जैसे-जन्म, मुन्डन, विवाह, विभिन्न त्यौहार, एकादशी, पूर्णमासी, अमावस्या और यहाँ तक कि मृतक के दाह संस्कार और तेरहवीं तक किये जाने वाले पूजा-पाठों के माध्यम से पहुँच जाता था। उन्होंने ऐसे वातावरण, विश्वास, संस्कृति एवं परम्परा की नींव डाली जिसमें उनकी उपस्थिति और आशीर्वाद थे, क्योंकि वे लोग ईश्वर के निकट है। ऐसा प्रचारित किया गया कि ईश्वर और पुजारी को खुश किये बगैर कोई भी सुखी और प्रसन्न नहीं हो सकता।

क्षत्रियों ने अपने शारीरिक बलबूते पर अन्य दो वर्गों अर्थात् वैश्यों और शूद्रों को दबाना प्रारम्भ कर दिया। अपने शिल्पशास्त्र में रत सभी शिल्पशास्त्री जैसे लोहार, बढ़ई, कुम्हार, जुलाहे, दर्जी आदि आर्थिक रूप से ढीले पड़ गये और उन्हें वैश्य समुदाय से निम्न श्रेणी दे दी गयी। परन्तु जिनकी व्यापार में अच्छी आय थी, जैसे सुनार, सर्राफ और यहाँ तक कि मदिरा विक्रेता आदि वैश्य वर्ग में

सम्मिलित कर लिये गये। अंततः हर कार्य करने के लिए एक विशेष जाति बन गयी और उनका मूल्यांकन उनकी आर्थिक स्थिति से होने लगा।

आधुनिक काल में समाज सुधार आन्दोलन

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दू समाज के अधिकांश समुदायों की दशा वास्तव में दयनीय हो गयी। शासकों व सम्पन्न व्यक्तियों के अत्याचारों से उनकी हालत और बिगड़ गयी। अनेक लोगों ने उनकी इस वेदनापूर्ण स्थिति को देखा और उनकी दयनीय स्थिति पर हार्दिक दुःख भी प्रकट किया। उनमें से कुछ लोगों ने महिलाओं और दलित वर्ग की स्थिति में सुधार लाने के लिये आन्दोलन भी चलाये।

राजा राममोहन राय एक उच्च शिक्षित ब्राह्मण जिन्हें बंगाली, अंग्रेजी, संस्कृत, पारसी, अरबी, लेटिन, ग्रीक व हिब्रू आदि का समूचा ज्ञान था, ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इस आन्दोलन की नींव रखी। वे जाति-पांति से अलग केवल एकनिष्ठ समाज में विश्वास करते थे। बीस अगस्त अठारह सौ अठाइस में उन्होंने ब्रह्म-समाज की स्थापना की। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरोध में भी कार्य किया और उसे जड़ से समाप्त कर दिया। उन्होंनें स्त्री शिक्षा और निम्न वर्ग के लोगों को शिक्षा के लिये प्रेरित किया। ब्रह्म समाज का संदेश रवीन्द्र नाथ टैगोर, केशव चन्द्र सेन और भण्डारकर आदि महानुभावों द्वारा जन समुदाय तक पहुँचाया गया।

यायधीश महादेव गोविन्द रानाड़े ने १८६७ में प्रार्थना-समाज की स्थापना की और आजीवन विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, दलित वर्ग की शिक्षा और निम्न वर्ग की हालत में सुधार लाने के प्रयास किये। उन्होंने अन्तर्जातीय भोज, विधवा विवाह और स्त्री तथा दलित वर्ग के लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने का भी प्रयत्न किया।

संस्कृत के विद्वान स्वामी दयानन्द सरस्वती ने १८७५ में एक बहुत ठोस सांस्कृतिक समूह को 'आर्य समाज' के नाम से स्थापित कर जातिहीन समाज के निर्माण पर बल दिया। वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे, वेदों में आस्था रखते थे, लेकिन पुराणों को अर्थहीन समझते थे। उन्होंने भारतीय समाज की बुरी प्रथाओं और मूर्ति-पूजा तथा धार्मिक अनुष्ठानों का कठोरता से विरोध करके स्वयं अपने नेतृत्व में आन्दोलन चलाया। उन्होंने निम्न वर्ग, दलित वर्ग और महिलाओं की शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया। वे बाल विवाह के भी विरोधी थे और स्त्री व पुरूष के सामानाधिकारों में विश्वास रखते थे।

आर्य समाज के उपदेश नगरों तक ही सिमट कर रह गये परन्तु वहाँ उन्होंने हिन्दू प्रथाओं और परिपाटियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा। आर्य समाज के रीति-रिवाज और नियम बड़े सरल थे। वे अल्पसामयिक, सस्ते और सनातन धर्म के अधिक विरोधी न होने के कारण पालन करने में भी आसान थे। सनातन धर्म के नियम बेहद जटिल, दीर्घकालिक और महंगे हुआ करते थे, जहाँ ब्राह्मण हर अवसर पर कुछ न कुछ दान दक्षिणा अवश्य लेते थे।

आर्य समाज में 'हवन' का बहुत महत्व है और कई लोगों ने इसे अपना भी लिया लेकिन उसके साथ-साथ कई लोगों ने सनातन धर्म के अनुष्ठानों का विधिवत पालन करना भी प्रारम्भ कर दिया। आर्य समाज के रीति रिवाज सनातन धर्म में ही मिश्रित हो गये और आर्य समाज के कट्टर पंथियों ने भी अपनी जाति परिवर्तन नहीं की। यहाँ तक कि वे आर्य समाजी भी जिन्होंने अपने नाम के साथ 'आर्य' उपनाम जोड़ दिया था, वैश्य, मित्तल और लोधी ही बने रहे। उन्होंने अपनी पुत्र-पुत्रियों का अपनी ही जाति में विवाह सम्पन्न कराया जबकि आर्य समाज के अनुसार कोई जात पात नहीं होती और सभी मानव एक समान होते हैं।

आर्य समाज के उद्गम से भी दलित वर्ग पर होने वाले अत्याचारों में कमी नहीं आयी और उनकी दशा पहले जैसी ही बनी रही। ग्राम जीवन पर आर्य समाज का बहुत कम प्रभाव था, इसलिये सदोपदेशों के बाद भी आर्य समाज का आंदोलन दलित वर्ग के हालात को न बदल सका।

स्वामी विवेकानन्द ने भी जातिहीन समाज का समर्थन किया। वे छुआछुत के भी घोर विरोधी थे और चाहते थे कि हर भारतवासी में आत्मिक शक्ति, आत्म विश्वास शारीरिक शक्ति आदि का उदय हो जिससे वह कठोर परिश्रम कर सके। उनके हृदय में वेदान्त के लिये बहुत श्रद्धा थी, किन्तु वे व्यर्थ और बनावटी ढकोसलों के सख्त खिलाफ थे। उनके विचार में जजन योग सर्वोत्तम योग है और वे कहते थे कि यदि धर्म ज्ञान की परीक्षा में खरा नहीं उतरता तो वह धर्म नहीं पाखण्ड मात्र है।

उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि भगवान की खोज करने के बजाय उसे दीन, दुखी, दरिद्र और कमजोर वर्ग में देखों। उन्हीं में सच्चा भगवान हैं, इसलिये उन्हीं की पूजा करना श्रेयस्कर है। वे इस बात के विरोधी थे कि लोग अपने को निर्बल या पापी समझें। वे चाहते थे कि लोग आगे बढ़कर मानवता के लिये कुछ त्याग करें।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में महात्मा ज्योतिबा फूले ने एक शक्तिशाली आन्दोलन का संगठन किया जिसे महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज का नाम दिया गया। उन्होंने एक विद्यालय कन्याओं और एक अछूतों के लिए खोला। यह आन्दोलन मुख्यतः ब्राह्मण जाति के विरूद्ध था। कोल्हापुर के महाराजा भी इसमें शामिल हो गये और उन्होंने दलित वर्ग को ब्राह्मणों से बचाकर उनके उद्धार की योजना बनाई। यह आन्दोलन विशेषकर उन पिछड़ी जातियों के लिये था जो आर्थिक रूप से तो सम्पन्न थीं, किन्तु ब्राह्मणों के सर्वोच्च पद के कारण स्वयं में हीन भावना का अनुभव करती थीं। मध्य वर्ग जैसे यादव, कुर्मी, कुंभी, गूजर, माली, धनक, लोधा, जाट, रेड्डी, वेल्लाला, कारूनूर आदि में इस भावना का उदय हुआ कि ब्राह्मणों द्वारा उनका उत्पीड़न किया जा रहा है और वे भी उच्च वर्ग के आधिपत्य के विरूद्ध संघर्ष करने के लिये उठ खड़े हुये।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में केरल के ऐजहावा, तमिलनाडु के नादर और कर्नाटक के इडिगा जाति के लोगों ने भी अपनी उचित शिक्षा के अधिकार मंदिरों में जाने की अनुमति और दूसरे घृणित रिवाजों तथा छुआछूत के मसले को लेकर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस आन्दोलन को श्री नारायण धर्म परिपालन संस्था ;ैछक्च्द्ध का नाम दिया और इसका नेतृत्व श्री नारायण गुरू स्वामी ने किया जिसे हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त हुई। केरल में इस आन्दोलन के प्रयास, जातिवाद को समूल नष्ट करने के लिये, मन्दिरों एवं अन्य धर्म स्थलों में पिछड़ी तथा अछूत जातियों के प्रवेश कराने, शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें सुविधा शुल्क प्रदान करने तथा राजकीय सेवा में आरक्षण दिलाने हेतु किया गया था। यह सुनियोजित तथा संस्थापित प्रयास जो पिछड़ी जातियों के उद्धार के लिये किया गया था आज भी सक्रिय है और ैछक्च्द्ध के नर्सरी कक्षा से लेकर उच्च शिक्षा के कॉलेज, प्ज्ब् जैसे उच्च प्रशिक्षण संस्थायें तथा पॉलिटेक्निक केन्द्र और आधुनिक सुविधायुक्त चिकित्सालयों के रूप में अपनी शोभा बढ़ा रहा है।

महात्मा गांधी, एक प्रतिभाशाली, सच्चे कर्मयोगी थे जिन्होंने निर्धनों और दलित वर्ग के उत्थान के लिये अतुलनीय और अथक प्रयास किये।

उसके लिये उन्होंने ने तो किसी को उपदेश दिया और न ही किसी प्रकार की पूर्व योजना बनाई, बल्कि छुआछूत के संकट को स्वयं कार्यान्वित करके उसे संसार के सामने लाये। वे ही केवल ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने हरिजनों की बस्ती में उनके साथ रहकर उनके साथ भोजन करके स्वयं दिखाया। उन्होंने हरिजनों के साथ बिना भेदभाव के काम किया, यहाँ तक कि उनके साथ दूसरों के मल-मूत्र उठाये और सर पर रखकर दूर के क्षेत्र में विसर्जन किया।

सन् १९२९ का अछूतोद्धार आन्दोलन महात्मा गांधी के अभियान में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास था, क्योंकि वे सोचते थे कि छुआछूत ही हिन्दू धर्म की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। वे वर्ण प्रणाली में तो विश्वास करते थे, किन्तु बलपूर्वक कहते थे कि छुआछूत का रिवाज सच्चे हिन्दू धर्म का हिस्सा नहीं है। ऊँच-नीच के विभाजन ने हिन्दू धर्म को संक्रमित करके इसके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डाला है।

हरिजन नाम गांधीजी ने इसलिये दिया जिससे उच्च वर्ग के लोग यह महसूस कर सकें कि हर दलित भी उन्हीं की तरह ईश्वर का व्यक्ति है। गांधी जी ने अपने विचारों को कहने से अधिक उन पर स्वयं कार्य करके दिखाया।

सन् १९२५ में डॉ० हैडगेवार ने हिन्दू समाज की पुनर्स्थापना करके दलित वर्ग की स्थिति में सुधार लाने के लिये राष्ट्रीय स्वययं सेवक संघ ;त्ैैण्द्ध की स्थापना की। यह संस्था हिन्दू समाज की सभी जातियों की एकता के लिये कार्य करती है और इसके स्वयं सेवक साथ-साथ रहते, काम करते और भोजन ग्रहण करते हैं। संघ में जाति विभाजन जैसा कुछ भी नहीं और कोई भी व्यक्ति त्ैैण् में किसी भी ऊँचाई तक जा सकता है

डॉ० हैडगेवार महान ज्ञानी और दूर दृष्टि पुरूष थे। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनों से अलग रखकर मनुष्य के स्वास्थ्य, नैतिकता और प्रत्येक भारतीय के सामाजिक दृष्टिकोण को धन में रखकर संगठित किया जिससे

उन सब में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हो। संघ किसी पूजा पाठ में आस्था नहीं रखता बल्कि उसका गुरू उसका अपना झण्डा है और उसका उद्देश्य राष्ट्र की सेवा करना है। यह आन्दोलन आज भी प्रगति पथ पर अग्रसर है।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर एक महान विद्वान थे। उन्होंने दलित वर्ग के उत्थान के लिये अभूतपूर्व कार्य किया। उन्होंने उनकी दासता और मन में छिपी हीन भावना को भी जड़ से उखाड़ने का आह्वान किया। डॉ० अम्बेडकर साहब ने सन् १९२७ में महान्द सरोवर का सत्याग्रह प्रारम्भ किया। उस समय वहाँ पशु तो स्नान कर सकते थे परन्तु दलितों का प्रवेश वर्जित था। उस सत्याग्रह के समय वहाँ के लोगों ने डॉ० अम्बेडकर व उनके साथियों को डण्डों से भी पीटा, परन्तु वह अपनी लगन एवं न्यायालय की सहायता से उस सरोवर में दलितों का बेरोकटोक प्रवेश कराने में सफल हुए।

सन् १९३० में बाबा साहब ने नासिक के कालासम मन्दिर में अछूतों का प्रवेश कराकर उसमें भी सफलता प्राप्त की। उन्होंने श्रमिक नेता के रूप में श्रमिकों को अपने अधिकार दिलाये एवं उनकी अवस्था को सुधारने के लिए कई प्रावधान पारित कराये।
स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माता के रूप में उन्होंने अछूतों के उद्धार के लिए कई प्रावधान किये तथा छुआछूत को मिटाने का भी विधान बनाया।

डॉ० अम्बेडकर साहब ने महिलाओं को अधिकार दिलाने के लिए हिन्दू कोडबिल की व्याख्या की तथा भारी विरोध के उपरान्त भी उसे विधानसभा में पास कराने में सफलता प्राप्त की। डॉ० अम्बेडकर साहब आरक्षण के समर्थक नहीं थे, परन्तु दलितों एवं दुर्बलों की दशा सुधारने हेतु केवल १० वर्ष के लिए उन्हें अतिरिक्त आरक्षण देने के लिए सहमत हुए। वे दलितों एवं महिलाओं को समाज के अन्य लोगों के समकक्ष देखना चाहते थे और जीवन भर दलित उत्थान के कार्य में लगे रहे इसलिये लोग उन्हें दलितों का मसीहा कहते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक नियम लागू किये गये और छुआछूत अतीत की वेदना बनकर रह गयी। अब दलितों को स्कूली शिक्षा की सुविधा ही नहीं बल्कि हर शैक्षिक संस्थान में सीटों का आरक्षण भी दिलाया गया है। साथ-साथ उन्हें सरकारी नौकरियों में भी आशातीत सफलता मिली है। फिर भी उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है। इनमें से अधिकांश आज भी निर्धनता की रेखा से नीचे हैं। इनमें स्वाभिमान और आत्मविश्वास की कमी है। मैं सोचता हूँ कि उनके सुधार के लिये आज भी गंभीर प्रयासों की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एन्हीलेशन ऑफ कास्ट, 1936
2. मिस्टर गांधी एण्ड इमेन्सिपेशन ऑफ अनटचेवल्स (1943)
3. हू वर दि शूद्राज 7 हाउ दे केम दु वि दि फोर्थ वर्ण इन इण्डो–आर्यन सोसाइटी, 1946
4. दि अनटचेबल्स, 1948
5. कास्ट्स इन इण्डिया, देयर मेकेनिजम, जैनेसिस एण्ड डेवलपमेंट (1977 में प्रकाशित)
6. भारतीय समाज और दलित राजनीतिः चन्द्रभान प्रसाद– 2006, पेज नं0 44–46
7. पंकज वोहरा, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली तथा साहब ने दी दलितों के हाथ सत्ता; रचना सरन, हिन्दुस्तान (लखनऊ/नई दिल्ली, संस्करण), 10 अक्टूबर, 2006
8. हरजिंदर : शून्य शिखर की ओर हिन्दुस्तान (लखनऊ संस्करण), 10 अक्टूबर, 2006